सिमरन

भाग - ११

'सिमरन' की क्रिया के संक्षिप्त रूप में दो पक्ष हैं—

१. बाहरमुखी—शारीरिक तथा मानसिक क्रिया ।

२. अन्तर्मुखी—आत्मिक निजी अनुभव अथवा 'अनुभवी प्रकाश'।

शारीरिक तथा मानसिक 'सिमरन' की क्रिया के विषय में विस्तारपूर्वक विचार की जा चुकी है । इन दोनों पक्षों के परस्पर सम्बन्ध को कुछ और उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

धरती के अन्दर पानी है । अन्दर के इस निर्मल पानी को हम बाहर निकाल कर अपनी जरूरतें पूरी करते हैं । धरती के पानी को बाहर निकालने के लिए धरती में बोरिंग (boring) करनी पड़ती है । बोरिंग करते हुए जब पानी की तह तक पहुँच जाते हैं, तब किये हुए 'बोर' में नल की पाईप डालने से निचला पानी ऊपर चढ़ आता है। परन्तु पानी को बाहर निकालने के लिए तथा चालू रखने के लिए हमें बोकी डालकर नल चलाना पढ़ता है। नया बोर करने पर शुरु-शुरु में नल चलाने पर भी पानी बाहर नहीं निकलता, क्योंकि इसकी पाईप में 'हवा' भरी होती है । जितनी देर तक नल में से **'हवा' बाहर नहीं निकलती,** नीचे का पानी उपर नहीं चढ़ सकता। नल में से हवा को निकालकर **पानी चालू करने के लिए** हमें बाहर से **पानी डालना** पड़ता है। इस प्रकार हम जैसे-जैसे नल चलाते हैं, 'हवा' बाहर निकलती जाती हैं तथा पानी लगातार चल पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार परमार्थ में भी हम **'सिमरन'** द्वारा अन्तर्मुखी बोरिंग करते हैं। सिमरन की यह **बाहरमुखी साधना** हमारी सुरत्ति को किसी हद तक ऊँचा उठा सकती है, उसके आगे 'आत्मिक मंडल' में नहीं पहुँचा सकती। इसका कारण यह है कि हमारे सिमरन की तह में, **नल की 'हवा' की भाँति 'अहम्' का अंश होता है**, जैसे —

मैं सिमरन करता हूँ।

मेरा सिमरन चलता है।

मेरी अवस्था ऊँची हो गयी है।

मैं भला पुरष या महापुरुष बन जाऊंगा ।

मेरी उपमा होगी ।

लोग पैर छुऐंगे ।

मैं मुक्ति पा लूँगा ।

आदि !

अहम् की ऐसी 'भावनाएं', सिमरन करते हुए भी, हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

अहम् की यह भावना एवं इलाही श्रद्धा-भावना एक दूसरे के उल्ट तथा विपरीत हैं।

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इकि ठाइ ।।

(पृ. ५६०)

क्योंकि —

हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ ।।

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. ५६०)

'सिमरन' अथवा 'इलाही याद' **अति सूक्ष्म दैवीय भावनाओं की**

खेल हैं — जो सतिगुरू की 'दात' है। इस में हम, अहम्ग्रस्त जीवों का कोई दखल या **ज़ोर नहीं,** यह तो **'गुरप्रसाद'** है। सतिगुरु की बख्शिश या कृपा-दृष्टि के बिना यह **आत्मिक दात** प्राप्त नहीं हो सकती।

दातै दाति रखी हथि अपणै जिसु भावै तिसु देइ ।। (पृ. ६०४)

जोरु न मंगणि देणि न जोरु ।। (पृ. ७)

आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ ।।
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देई ।। (पृ. १३७८)

देवण वाले कै हथि दाति है गुरू दुआरै पाइ ।। (पृ. ३३)

इस इलाही 'दात' की प्राप्ति तब होती है, जब हमारे मन में से 'हउमैं रूपी हवा' का भ्रम-भुलाव दूर हो जाये, या मन के ऊपर चढ़ी **मानसिक मैल उतर जाए** तथा इस **'दात' के लिए भूख या काँखी (तीव्र प्यास) लग जाये!**

जिन कउ लगी पिआस अंम्रितु सेइ खाहि ।। (पृ. ९६२)

जैसी पिआस होइ मन अंतरि तैसो जलु देवहि परकार ।।
(पृ. ५०४)

जब तक मन के ऊपर से **अहम् की मैल नहीं उतरती,** अथवा मैं-मेरी का भ्रम दूर नहीं होता, तब तक हम इलाही-बख्शिश से **वंचित रहते हैं —**

जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही ।। (पृ. ६५७)

जब इह जानै मै किछु करता ।।
तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ।। (पृ. २७८)

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं ।।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू ।। (पृ १३७५)

यह **'अहम्' रूपी मैल** साध संगति में **श्रद्धा-भावना सहित** सेवा-सिमरन करते हुए गुरू-कृपा द्वारा उतर सकती है —

साधसंगि मलु लाथी ।।
पारब्रहमु भइओ साथी ।। (पृ ६२५)

नल में बाहर से पानी डालना सतिगुरु की दैवीय बख्शिश का प्रतीक है ।

यहाँ **'निर्वात स्थान'** (vacuum) का एक ओर उपयुक्त उदाहरण दिया जा सकता है।

हमारे नल में से जब पानी कम आये या बिल्कुल ही न आये तो मिस्त्री बताते हैं कि इस में से **'हवा'** लीक (leak) हो रही है । जब नल को उखाड़ कर देखा जाये तो इसके कुछ हिस्से में जंग लगकर गलने के कारण छेद दिखायी देता है। इस छेद में से 'हवा' लीक (leak) होकर बाहर से अन्दर घुस जाती है, जिस कारण इसके बीच 'निर्वात स्थान' कम होता जाता है । ज्यों-ज्यों यह **'निर्वात'** कम होता जाता है त्यों-त्यों अन्दर के पानी की **निकास-शक्ति** या वेग (expulsive power) कम होता जाता है। **अन्त** में निर्वात बिल्कुल ही नहीं रहता, जिससे पानी के लगातार चढ़ाव (spontaneous) में विघ्न पड़ जाता है ।

ठीक इसी प्रकार 'सिमरन' करते हुए जब हमारे मन में **'अहम्-भाव' रूपी बाहर की 'हवा' का अंश प्रवेश हो जाता है,** तो हमारी 'अन्तर्आत्मा' में **सतिगुरू की बख्शिश** घटती जाती है। ऐसी दशा में हमारा **'सिमरन' भावनारहित, रूखा-सूखा हो जाता है** तथा हमारी 'आत्मिक अवस्था' की उन्नति रुक जाती है। ('खड़दिआँ कला' में चली जाती हैं।)

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु ।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु ।।
सेवा थाइ न पवई तिस की खपि खपि होइ खुआरु ।। (पृ. १२४७)

इसका तात्पर्य है कि सिमरन करते हुए जिज्ञासु के मन में —

१. अहम् का **'अभाव'** होना अनिवार्य है ।

हउमै नावै नालि विरोधु है
दुइ न वसहि इकि ठाइ ।। (पृ. ५६०)

२ कोई लालच या **आशा-तृष्णा** नहीं होनी चाहिए ।

आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा ।।
(पृ. ६३३)

३. **'प्रेम-भावना'** सहित सिमरन करना चाहिए

गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि ।। (पृ. ९४१)

'अहम्' का विचार **परमेश्वर की 'भूल'** में से उत्पन्न होता है। परमेश्वर की याद या **'सिमरन'** द्वारा अहम् ग्रस्त **'मैं-मेरी'** की भावना को बदलने की आवश्यकता है, जो **'उल्टी खेल प्रिम'**, की है। यह **'प्रेम-भावना'** अथवा **'भक्ति-भाव'** भी सतिगुरू की **बख्शिश** है, कृपा-दृष्टि है, गुरु प्रसाद है जो साध-संगति में विचरण करते हुए **सहज ही प्राप्त होता रहता है** —

साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै
भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ।। (पृ. ६९४)

यह **प्रीत-प्रेम-प्यार** 'अकाल-पुरुष' का **'प्रकाश रूप'** है, जैसे 'धूप' **सूर्य** की या 'खुशबू' फूल का प्रकाश-रुप है। इसी कारण परमेश्वर

को **'अति-प्रीतम'**, **'प्रिय'**, **'प्रेम-पुरुख'** आदि शब्दों से संबोधित किया गया है —

अति प्रीतम मन मोहना घट सोहना प्रान अधारा राम ।।
(पृ. ५४२)

प्रिअ प्रीति पिआरो मोरो ।। (पृ. १३०६)

इस 'प्रेम-भावना' को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है।

बच्चे का पालन 'माँ' भी करती है तथा नर्स (nurse) भी। 'माँ' **प्यार-भावना** से बच्चे का पालन करती हुई उस पर **अपना आप** न्यौछावर करती है, परन्तु 'नर्स' **भावनारहित 'डियूटी'** पूरी करती है। इन दोनों की **'मेहनत'** में **सूक्ष्म अन्तर** है—जिसका बच्चे के पालन-पोषण से लेकर जीवन के हर क्षेत्र में बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस बच्चे को बचपन में **'माँ'** का प्यार नहीं मिलता, उसके जीवन में इसका अभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इसी प्रकार प्रेमाभक्ति या **प्यार-भावना के बिना** तथा-कथित साधु-सन्तों एवं योगियों वाला **'सिमरन' अथवा 'समाधि'** भी मनहठ क्रिया है, जिसमें **'अहम्-भाव' का अंश होता है।** उनकी जीवन-दिशा —

मानसिक शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए
उम्र लम्बी करने के लिए,
रिद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए
जादू-टोने,
नाटक-चेटक,
करामात,

वाक्-सिद्धि,

भविष्य-वाणी,

वर-श्राप,

अन्तर्यामिता,

तान्त्रिक-जादू,

मदारियों के तमाशे

—आदि तक ही **सीमित** होती हैं। इन रिद्धियों-सिद्धियों की शक्ति से उनके **सूक्ष्म अहम् को 'उकसाहट' मिलती रहती है** और वह करामात दिखाने लगते हैं एवं वर-श्राप देने लगते हैं, जिससे गर्जमन्द जनता आकर्षित हो जाती है। इस प्रकार अचेत ही जिज्ञासुओं के मन में सूक्ष्म अभिमान आ जाता है। इस अभिमान तथा प्रतिष्ठा से उन्हें **मानसिक 'अहम्'** का 'नशा' चढ़ जाता है और वह इन मानसिक प्राप्तियों में ही खचित रहते हैं —

यही उनका **'मन-बहलाव'** तथा परमार्थ बन जाता है। परन्तु गुरबाणी अनुसार —

रिधि सिधि सभु मोहु है नामु न वसै मनि आइ ॥ (पृ. ५९३)

बिनु नावै पैनणु खाणु सभु बादि है धिगु सिधी धिगु करमाति ॥ (पृ. ६५०)

अभिमान के इस **'नशे'** में जिज्ञासु इतना गलतान हो जाता है कि वह अपनी उच्च **आत्मिक मंजिल** को पूरी तरह ही भूल जाता है। इससे उसकी **आत्मिक उन्नति रुक जाती है** तथा वह **'खड़दिआँ कला'** में विचरण करते हुए धीरे-धीरे रसातल की ओर खिसक जाता है अथवा मनमोहक ठाठ-बाठ बना कर चेले-चाटों में **फँस जाता है।**

कबीर सिरव सारवा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु ।।
चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु ।।
(पृ. १३६९)

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे गोरखनाथ, भंगरनाथ, नूरशाह, वली कंधारी आदि जिन्हें गुरू साहिब ने थोथे मन-हठ योग में से निकालकर, प्रेमाभक्ति की ओर लगाया ।

आजकल मन-हठ, थोथे तथा मकैनीकल 'सिमरन' का बोलबाला एवं प्रचलन है। देश-विदेशों में कई आत्मिक संस्थाएँ (Spiritual Institutions) बनी हुई हैं, जिनमें ऐसे **'थोथे' सिमरन** (mechanical meditation) के **समय-बद्ध कोर्स** (time bound course) **बिकते हैं** तथा वह भी **बहुत महँगे मोल।**

ऐसी संस्थाओं में भावनारहित, दिमागी तथा थोथा 'सिमरन' या 'मंत्र का रटन' जिज्ञासुओं को 'मानसिक शून्य' अथवाा 'शून्य अवस्था' (thoughtless state of mind) तक तो पहुँचा सकता है परन्तु उनके जीवन को आत्मिक-अनुभव की ऊँचाइयों तक नहीं ले जा सकता। योगियों की ऐसी रसहीन तथा विचारहीन (अफुर) शून्य अवस्था केवल शारीरिक समाधि के दौरान ही कायम रहती है। 'जागृत-अवस्था' में इस शून्य का कोई अर्थ या लाभ नहीं ।

ऐसे जिज्ञासुओं की सुरति 'मुर्गे की उड़ान' की भाँति परमार्थिक अन्तरिक्ष (space) या 'निर्वात' (vacuum) तक ही सीमित होती है, इसके आगे वह 'आत्मिक-मंडल' के प्रेम रस का स्वाद नहीं चख सकते। यह 'शून्य-समाधि' जिज्ञासु के 'आत्मिक-मार्ग' में सूक्ष्म तथा **सबल रुकावट** है, जिस में से योगी अपने आप नहीं निकल सकता।

नीचे लिखे उदाहरण द्वारा इस नुक्ते को भली-भाँति समझा जा सकता है —

वैज्ञानिक, धरती से चन्द्रमा की ओर स्पूतनिक (sputnik) भेजते हैं,

जिसके तीन पड़ाव होते हैं। पहले धरती से अन्तरिक्ष में ले जाने के लिए रॉकेट (rocket) की सहायता ली जाती है, जो उसे धरती की आकर्षण-शक्ति (gravity) से बाहर ले जाता है। यहाँ पहुँच कर वह स्पूतनिक अन्तरिक्ष (space) में ही चक्कर लगाता रहता है, जब तक कि उसे उससे भी शक्तिशाली 'रॉकेट' चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति की सीमा के अन्दर नहीं पहुँचा देता। चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति की सीमा के अन्दर पहुँचने पर उसे किसी 'रॉकेट' की आवश्यकता नहीं रहती तथा वह स्वयं ही चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति से खिचता जाता है।

इसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक अवस्थाएँ हैं। जब जीव शारीरिक तथा मानसिक 'खेल-अखाड़े' से असन्तुष्ट होकर 'सिमरन' द्वारा वृत्तियाँ एकाग्र करता है, तब वह 'शुन्य-समाधि' के **सुनसान निर्वात** में जा घुसता है। अकाल-पुरुख के **अनुभवी मंडल** तक पहुँचने के लिए उसे इस 'सुंन' या 'शून्य' अवस्था में से गुजरना पड़ता हैं।

जब जिज्ञासु की सुरति मानसिक **'शून्य समाधि'** मे स्थिर हो जाती है, तो उसे —

शान्ति
ठंड
सुख
एकान्त

—प्रतीत होता है, जिसमें से निकलने को दिल नहीं करता । इसी में सन्तुष्ट होकर, या इसी रूखी-सूखी **'शून्य-समाधि'** को ही **आत्मिक जीवन की 'मंजिल' समझकर,** जिज्ञासु इससे ऊँची अवस्था —

प्रेमाभक्ति,
सहज समाधि,
सहज आनंद,

नाम,

शब्द,

— को भूल जाते हैं।

इस सूक्ष्म **परमार्थिक भ्रमपूर्ण 'शून्य या निर्वात'** में से केवल गुरू-कृपा द्वारा बख्शे हुए गुरुमुख-प्यारों की संगति द्वारा ही निकला जा सकता है। इस **गुप्त भेद** को गुरबाणी इस प्रकार दर्शाती है —

सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ ।।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ।। (पृ ७३०)

खट करम किरिआ करि बहु बहु बिसथार
सिध साधिक जोगीआ करि जट जटा जट जाट ।।
करि भेख न पाईऐ हरि ब्रहम जोगु हरि पाईऐ सतसंगती
उपदेसि गुरू गुर संत जना खोलि खोलि कपाट ।।
(पृ १२९७)

जोगु न भगवी कपड़ी जोगु न मैले वेसि ।।
नानक घरि बैठिआ जोगु पाईऐ सतिगुर कै उपदेसि ।।
(पृ १४२१)

आजकल संसार में अनेक धार्मिक कर्म-क्रियाओं के **बावजूद** मानसिक ग्लानि बढ़ती जा रही है । इससे स्पष्ट है कि **परमार्थ की ओर हमारा यत्न** नाममात्र तथा अधूरा या गलत है ।

इस नुक्ते को गुरबाणी में ऐसे दर्शाया गया है —

राम-राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ ।।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ ।। (पृ ४९१)

कबीर राम कहन महि **भेदु** है ता महि एकु बिचारु ।।
सोई रामु सभै कहहि **सोई कउतकहार ।।** (पृ १३७४)

यह **भेद** है —

भक्ति-भाव

प्रेम-भाव

श्रद्धा-भावना

गुर प्रसादि का !

इस **आत्मिक भेद** को कोई विरला गुरुमुख ही **बुझता तथा विचारता है** —

ऐसे जन विरले संसारे ।।

गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे ।। (पृ १०३९)

गुरमति चलदे विरले बन्दे ।

(वा. भा. गु. २८/२०)

जब ऐसे 'गुरमुख जन' अथवा 'हरिजन प्यारे' अपनी उक्तियाँ-युक्तियाँ तथा 'क्यों-क्या-कैसे' के ढँकोसले छोड़कर, भक्ति-भाव एवं प्रेम-भावना **सहित 'सिमरन' द्वारा शब्द सुरति में लिव लगाते हैं, तब सतगुरू की बख्शिशों के पात्र बनते हैं** —

भाइ भगति भरम भउ नासै हरि नानक सदा हजूरि ।।

(पृ. ४०६)

गोबिन्द भाउ भगति दा भुखा । (वा. भा. गु १०/७)

भावनी भगति भाइ कउडी अग्र भाग रारवै
ताहि गुर सरब निधान दान देत है । (क. भा. गु. १११)

प्रेम प्रीति भाइ भगती पाईऐ सतिगुरि बूझ बुझाई ।।

(पृ. २४५)

जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ ।।

(स्वैये पा. १०)

प्रभु का निर्मल 'प्रेम' हृदय में बसाने के लिए अकाल पुरुष के प्रति श्रद्धा-भावना होनी अनिवार्य है।

उदाहरणतय छोटे बच्चे (baby) के मन में अपनी माँ के प्रति **'भोले-भाव' ही श्रद्धा-भावना होती है।** बच्चा सबसे पहले माँ शब्द सीखता है तथा माँ पर उसे पूरा विश्वास होता है । इस **बालपन के भोलेपन** (innocence) **की अवस्था में 'माँ'** ही उसका —

गुरू
भगवान
दाता
रक्षक
सब-कुछ

होती है।

दूसरी ओर, 'माँ' भी अपने 'माँ-प्यार' की ममता में 'बेबी' की हर प्रकार की देख भाल तथा सेवा सँभाल करती हुई दिल की गहराइओं में से उसको **निश्छल प्यार देती है** । 'बच्चा' अपनी माँ के सहारे —

लाड-लडाता
खेल-खिलाता
शरारतें करता
वस्तुएँ माँगता
हँसता-रोता
लड़ता-झगड़ता
रूठता-मानता

—बेपरवाह, बेफिकर **'भोला जीवन'** व्यतीत करता है ।

कहा जाता है कि 'जीव' का यह **भोलेपन का निष्कपट जीवन** अथवा 'बचपन' उसके सारे जीवन में सबसे अधिक सुखदायी, निश्चिन्त

तथा खुशहाल होता है —

पाइओ बाल बुधि सुखु रे ।। (पृ. २१४)

माँ के 'प्यार' तथा 'श्रद्धा-भावना' में बच्चा अपनी **अबोल बोली** में सहज-स्वभाव, अनजाने ही अपनी माँ का —

सिमरन करता है

ध्यान करता है

आराधना करता है

प्रेम अनुभव करता है।

ज्यों-ज्यों बच्चे का मानसिक विकास होता है, वह ज्ञान तथा विज्ञान के चमकीले कौतुक देख कर **भ्रम-जाल में फँस जाता है**। धीरे-धीरे उसकी श्रद्धा-भावना अपनी 'माँ' के प्रति कम होती जाती है तथा वह **अपनी चतुराइयों में 'कर्म-बद्ध' होकर 'माँ-प्यार' की स्नेहमयी गोद के सुख से वंचित** हो जाता है।

इसी प्रकार 'जीव' माँ के उदर में कठिन परिस्थिति में उल्टा लटका हुआ 'अटूट-सिमरन' करता है तथा प्रभु से उसकी 'तार' जुड़ी रहती है ।

जब वह संसार में आता है तो उसके मन पर —

'माया' की परछाई पड़ जाती है

'अहम्' का भ्रम-भुलाव आ जाता है

'मैं-मेरी' की भावना उत्पन्न हो जाती है

'द्वैत-भावना' आ चिपकती है

'तृष्णा' लग जाती है

'हरि भूल' जाता है

प्रभु से लिव टूट जाती है।

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ।।
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ।।
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ ।।
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ।।
(पृ. ९२१)

इस प्रकार इन्सान माया के चकाचौंध करने वाले तथा जादूमय करिश्मों के प्रभाव में **चतुराइयाँ घोटता** हुआ **'इलाही-माता' अर्थात अकाल-पुरुष की प्रेम मयी गोद के सुख-आन्नद से वंचित हो जाता है ।**

इस अवस्था में गुरबाणी हमें इस प्रकार ताड़ना देती है —

सेखा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकतु घरि आणि ।।
एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु ।। (पृ. ६४६)
आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै ।। (पृ. ६०१)

यदि हम पुनः अकाल पुरुष की सुखदायी गोद का **आनन्द लेना चाहते हैं,** तो हमारा 'ईश्वर' पर, छोटे बच्चे (baby) की भाँति, पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास होना अनिवार्य है। अहम् ग्रस्त चतुराइयाँ तथा उनसे उत्पन्न 'फिकर-चिन्ता-चिता' से बचने के लिए गुरबाणी हमें इस प्रकार प्रेरणा देती है —

तजहु सिआनप सुरि जनहु **सिमरहु हरि-हरि राइ** ।।
एक आस हरि मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ।।
(पृ. २८१)

अबिनासी खेम चाहहि जे नानक **सदा सिमरि नाराइण** ।।
(पृ. ७१४)

चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु ॥
नानक नामु समालि तूं बधा छुटहि जितु ॥ (पृ ७२९)

अब प्रश्न यह उठता है कि **'बेबी' की भान्ति भोले-भाव विश्वास, प्यार-भावना तथा श्रद्धा-भावना** की प्राप्ति कैसे हो ?

ऐसा आत्मिक, **सहज विश्वास**, प्यार तथा **श्रद्धा-भावना** —

दिमागी शिक्षा
दार्शनिकता
पाठ-पूजा
कर्म-काण्ड
योग-साधना

– द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि **बाहरमुखी दिमागी ज्ञान** हमारी 'अल्प-बुद्धि' तक ही **सीमित** है । यह हमारे **मन की रंगत** के अनुसार **बदलता** रहता है।

इसके विपरीत **आत्मिक-श्रद्धा विश्वास तथा भक्ति-भाव** हमारे **अर्न्तात्मा में से सहज स्वभाविक ही प्रस्फुटित होती है** – इसलिए यह दृढ़ तथा अटॅल होती है।

ऐसा आत्मिक विश्वास बरख्शे हुए —

गुरुमुख प्यारों
बरख्शे हुए महापुरुषों
आत्म जीवन वाले
हरि जनों

— **की सेवा तथा संगति में ही उत्पन्न तथा प्रफुल्लित हो सकता है।** इसी लिए गुरबाणी में हमें **बार-बार साध-संगति में 'सिमरन' करने की प्रेरणा की गयी है**

मेरे मन हरि हरि नामु धिआइ ।।
करि संगति नित साध की गुर चरणी चितु लाइ ।।
(पृ. ४७)

अवरि काज तेरै कितै न काम ।।
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ।। (पृ. १२)

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ।।
(पृ. ६३१)

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ।।
(पृ. ६४२)

याहू जतन करि होत छुटारा ।।
उआहू जतन साध संगारा ।। (पृ. २५९)

– क्रमशः